वह अन्तरंगा अप्राकृत शक्ति-विशेष है जिसके द्वारा जीवात्मा को अपने शाश्वत् स्वरूप का बोध होता है। श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव ने अपने वचनामृत में इस दशा को **चेतो दर्पण मार्जनम्** कहा है। भाव यह है कि इस दशा में चित्तरूपी दर्पण का मार्जन हो जाता है। हृदय की ऐसी शुद्धि ही यथार्थ मुक्ति (**भव महादावाग्नि निर्वापणम्**) है। प्रारम्भिक निर्वाणमत इस सिद्धान्त के समान है। श्रीमद्भागवत में इस अवस्था को **स्वरूपेण व्यवस्थितिः** कहा गया है। इस श्लोक में भगवद्गीता भी इस दशा की पुष्टि करती है।

निर्वाण अथवा प्राकृत क्रियाओं की निवृत्ति हो जाने पर कृष्णभावना नामक भगवत्सेवामय दिव्य क्रियाकलाप की अभिव्यक्ति होती है। श्रीमद्भागवत की वाणी में **स्वरूपेण व्यवस्थितिः**—जीवात्मा का यथार्थ जीवन वास्तव में यही है। स्वरूप का विषयदोष से ढक जाना माया है। इस विषयदोष से मुक्ति का यह तात्पर्य नहीं है कि जीव के आदि नित्य स्वरूप का विनाश हो जाता है। पतञ्जलि ने इस सत्य का समर्थन किया है: **कैवल्यं स्वरूप-प्रतिष्ठा वा चिति शक्तिरिति**—यह चितिशक्ति ही यथार्थ जीवन है। वेदान्तसूत्र में अनुमोदन है: **आनन्दमयोऽभ्यासात्**। यह 'चितिशक्ति' योग का चरम लक्ष्य है और भक्तियोग के आचरण से इसकी प्राप्ति सुगमता से हो जाती है। सातवें अध्याय में भक्तियोग का विशद वर्णन है।

इस अध्याय में प्रतिपादित योगपद्धति से होने वाली समाधि दो प्रकार की है: **सम्प्रज्ञात** और **असम्प्रज्ञात**। नाना दार्शनिक अन्वेषणों से शुद्ध सत्त्वमयी स्थिति की उपलब्धि **सम्प्रज्ञात समाधि** कहलाती है। **असम्प्रज्ञात समाधि** में जड़ विषयानन्द के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता, क्योंकि उसमें निष्ठ महानुभाव सब इन्द्रियों से उत्पन्न सुखों से परे हो जाता है। एक बार इस चिन्मय स्वरूपनिष्ठा को प्राप्त हुआ योगी फिर कभी इससे चलायमान नहीं होता। साथ ही इसकी प्राप्ति के बिना वह कृतार्थ नहीं हो पाता। आज का नाममात्र का योगाभ्यास नाना प्रकार के इन्द्रियसुखों से युक्त होने के कारण अन्तर्विरोधात्मक (असंगत) है। मैथुन एवं मद्यपान करते हुए भी जो अपने को योगी कहता हो, वह उपहास का ही पात्र होगा। यहाँ तक कि जिनका चित्त यौगिक सिद्धियों की ओर आकृष्ट है, वे योगी भी संसिद्धि को प्राप्त नहीं हुए हैं। योग की गौण उपलब्धियों में आसक्त योगी इस श्लोक में वर्णित संसिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकते। अतः व्यायाम-कुशलता के कपट-अभ्यास में अथवा सिद्धिप्राप्ति में लगे व्यक्तियों को जान लेना चाहिए कि इस प्रकार करने से योग का लक्ष्य बिल्कुल नष्ट हो जाता है।

इस युग के लिए सर्वोत्तम योगपद्धति कृष्णभावना है, क्योंकि इससे कभी निराशा नहीं होती। कृष्णभावनाभावित भक्त अपनी कार्यस्थिति में इतना अधिक आनन्दविभोर रहता है कि उसे अन्य किसी सुख की लेशमात्र भी अभिलाषा नहीं हो सकती। विशेष रूप से इस कपटप्रधान कलियुग में हठयोग, ध्यानयोग, तथा ज्ञानयोग के अभ्यास में बहुत बाधाएँ आती हैं, पर कर्मयोग अथवा भक्तियोग का पथ तो आज भी सब प्रकार से निरापद है।